[2018] 12 एससीआर 654

यशवंत इत्यादि

बनाम

महाराष्ट्र राज्य

(आपराधिक अपील सं. 2008 की 385–386)

4 सितंबर, 2018

[एन. वी. रमना और मोहन एम. शांतागौदर, न्यायाधीशगण

*दंड संहिता, 1860–धाराएँ .302, 304 और धाराएँ .330,354,355,342 सहपठित धारा 34– अभियोजन का मामला यह था कि पुलिस अधिकारियों ने एक होटल में 'लूट' के बारे में जानकारी निकालने के लिए पीड़ित को हिरासत में ले लिया–यह आरोप लगाया गया था कि पुलिस अधिकारियों ने संस्वीकृति निकालने के लिए पीड़ित को चोट पहुंचाई, जिसके कारण पुलिस हिरासत में उसकी मौत हो गई–विचारण न्यायालय ने सभी आरोपी पुलिस अधिकारियों (ए–1 से 10) को धारा 302 भा.द.वि. से बरी कर दिया लेकिन **उन्हें धाराएँ 330, 354, 355, 342 सहपठित 34 के तहत दोषी ठहराया**।–उच्च न्यायालय ने धाराएँ **354, 355, 342 सहपठित 34 के तहत** दंडनीय अपराधों से (ए–1 से 9) बरी कर दिया। हालाँकि, भा.द.वि. . की धारा 330 के तहत उनकी दोषसिद्धि को बरकरार रखा और ए–10 को सभी अपराधों से बरी कर दिया–परिणामस्वरूप, अभियुक्त (ए–1 से 9) को धारा 330 भा.द.वि. के तहत तीन साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई।–उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील में, राज्य ने धारा 302 नहीं पाए जाने पर धारा 304 भाग 2 के तहत आरोप बनाए जाने के लिए दबाव बनाया। मामले में भा.द.वि. की धारा 302 नहीं बनाई गई थी–इस बीच ए–1 का निधन हो गया–अभिनिर्धारित:नीचे दोनों अदालतों ने एक समवर्ती विचार लिया था कि अपराध आपराधिक मानव वध के बराबर नहीं था क्योंकि मृत्यु का कारण दम घुटना था और यह साबित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं था कि चोटें मृत्यु का कारण थीं–यह रिकॉर्ड में था कि पोस्टमॉर्टम में उल्लिखित चोटों से संकेत मिलता है कि इन चोटों की प्रकृति गंभीर नहीं थी–बल्कि, यह एक ऐसा मामला था जिसमें पीड़ित–मृतक की मृत्यु उसको चोटें लगने के घंटों बाद उसकी उल्टी की सामग्री के कारण दम घुटने से हुई थी, जो मृत्यु का एक स्वतंत्र कारण था–गलती करने वाले अधिकारियों द्वारा मृतक को कारित हुई चोटों और मृत्यु के बीच आकस्मिक संबंध नहीं था, इसलिए।भा.द.वि. की धारा 299 आकर्षित नहीं है–तदनुसार, धारा 302 या 304 भा.द.वि. को आकर्षित करने का कोई सवाल ही नहीं है। –चूंकि इस मामले में पुलिस कानून का उल्लंघन करने वाले हैं, जिनकी कानून की रक्षा करने और उसे बनाए रखने की प्राथमिक जिम्मेदारी थी, इसलिए ए–2 से ए–9 की सजा की अवधि को अधिकतम अधिरोपणीय अवधि अर्थात 7 वर्ष का कठोर कारावास में संशोधित किया गया।– धारा 330 भा.द.वि.*

दंड संहिता, 1860 –धारा 299–आपराधिक मानव वध –अभिनिर्धारित: कार्य कारण यह निर्धारित करने के लिए एक महत्वपूर्ण घटक है कि क्या कोई व्यक्ति प्रथम द्रष्टया आपराधिक मानव वध करता है– का सीधा सा अर्थ है "आचरण और परिणाम के बीच का कारण संबंध" –धारा 299 दो प्रकार के कारणों को

इंगित करता है, एक तथ्यात्मक कारण और दूसरा कानूनी कारण–तथ्यात्मक कारण पर आते हुए, यह तथ्य की बात है कि क्या अभियुक्त की कार्रवाई व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनी–लेकिन दूसरा पहलू स्वयं से संबंधित है, क्या मृत्यु को अभियुक्त की कार्रवाई के लिए कानूनी रूप से जिम्मेदार होने के रूप में पर्याप्त रूप से आरोपित किया जा सकता है।

मैक्सिम– falsus in uno, falsus in omnibus – पर चर्चा की गई।

*Doctrine/सिद्धांत–' **अपने शिकार को ले लो जैसे वे उन्हें पाते हैं" के सिद्धांत पर चर्चा की गई। (take their victim as they find them)***

अपीलों का निपटारा करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित: 1. यह रिकॉर्ड की बात है कि नीचे दी गई दोनों अदालतों ने एक समवर्ती दृष्टिकोण अपनाया है कि विचाराधीन अपराध आपराधिक मानव वध नहीं है क्योंकि मृत्यु का कारण दम घुटना था और यह साबित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं था कि चोटें मृत्यु का कारण थीं।यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि इसे हत्या कहने के लिए, प्रथम द्रष्टया आपराधिक मानव वध होने की आवश्यकता है, यानी कि सभी हत्याएं आपराधिक मानव वध हैं, लेकिन इसके विपरीत सभी मामलों में सच नहीं हो सकता है।

2. भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 299 के तहत कार्यकारण यह निर्धारित करने के लिए एक महत्वपूर्ण घटक है कि क्या कोई व्यक्ति प्रथम द्रष्टया आपराधिक मानव वध करता है। का सीधा सा अर्थ है "आचरण और परिणाम के बीच कारण संबंध"।अब, इस बात का आकलन करने की आवश्यकता है कि क्या पक्षों की दलीलें देश के कानून की जांच में टिक सकती हैं।धारा 299 दो प्रकार के कारणों को इंगित करती है, एक तथ्यात्मक कारण और दूसरा कानूनी कारण।तथ्यात्मक कारण पर आते हुए, यह तथ्य की बात है कि क्या अभियुक्त की कार्रवाई व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनी।लेकिन दूसरा पहलू स्वयं से संबंधित है, क्या मृत्यु को कानूनी रूप से जिम्मेदार होने के रूप में अभियुक्त की कार्रवाई के लिए पर्याप्त रूप से आरोपित किया जा सकता है।यह मामला कारण संबंध के दूसरे चरण को चालू करता है। क्या पुलिस अधिकारियों को यहाँ पीड़ित की मृत्यु का कारण होने के लिए पर्याप्त रूप से आरोपित किया जा सकता है

3. यह सामान्य कानून के तहत तय किया जाता है जिसमें 'अपने शिकार को ले जाएँ जैसे वे उन्हें पाते हैं' का पालन किया जाता है, जिसका अर्थ है 'एक व्यक्ति' जो कोई ऐसा कार्य/चूक करता है जिससे किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु में तेजी आती है, जो जब कार्य किया जाता है या चूक की जाती है, तो किसी अन्य कारण से उत्पन्न किसी विकार या बीमारी के तहत श्रम कर रहा है, यह माना जाता है कि उसने उस अन्य व्यक्ति का आपराधिक मानव वध किया है।इस सिद्धांत को भा.द.वि. . की धारा 299 के स्पष्टीकरण 1 के तहत स्पष्ट रूप से निहित किया गया है। इस पहलू पर विवरण में गए बिना क्योंकि यह कई कारणों का मामला नहीं है, बल्कि यह एक ऐसा मामला है जिसमें मृतक की उल्टी की सामग्री के कारण दम घुटने से मृत्यु हो गई, उस समय से घंटों बाद जब चोट लगी थी, जो यहाँ मृत्यु के कारण का एक स्वतंत्र कारण है।

4. विभिन्न अन्य परिस्थितियाँ जो मृत्यु के कारण को अपीलार्थी अधिकारियों की कार्रवाइयों से अलग करती हैं, उपलब्ध हैं।यह रिकॉर्ड में है कि पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में उल्लिखित चोटें स्पष्ट रूप से इंगित करती हैं

कि इन चोटों की प्रकृति गंभीर नहीं थी।सिर की चोट खोपड़ी की हड्डी में कोई आंतरिक फ्रैक्चर नहीं दिखाती है।इसलिए, जब तथ्यों पर, नीचे की अदालतों द्वारा समवर्ती रूप से यह अनुमान लगाया जाता है कि मृत्यु का कारण दम घुटना था, तो इसमें एक अलग तथ्यात्मक निष्कर्ष को स्वीकार करने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि यह विकृत नहीं है।

5. गलती करने वाले अधिकारियों द्वारा मृतक को लगी चोटों और मृत्यु के बीच कारण संबंध जुड़ा नहीं है, इसलिए भा.द.वि. . की धारा 299 आकर्षित नहीं होती है।तदनुसार, भा.द.वि. . की धारा302 या 304 को आकर्षित करने का कोई सवाल ही नहीं है।

6. चित्रित तथ्यों से यह स्पष्ट है कि पुलिस को पता था कि मृतक की पहचान उस व्यक्ति से अलग थी, जिसकी वे शुरू में जांच करना चाहते थे।जिस तरह से मृतक और उसके परिवार के सदस्यों को हिरासत में लिया गया था, वह विशुद्ध रूप से अराजकता को दर्शाता है और पुलिस के आचरण के अनुकूल नहीं है।इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, भा.द.वि. . की धारा 330 के तहत विचारण न्यायालय द्वारा लगाए गए तीन साल के कारावास की सजा पूरी तरह से अपर्याप्त और असमानुपाती होगी। विचारण न्यायालय द्वारा लगाए गए जुर्माने को बनाए रखते हुए भा.द.वि. . की धारा 330 के तहत सजा की अवधि को अधिकतम अधिरोपणीय अवधि यानी सात साल के कठोर कारावास तक बढ़ाना उचित है।तदनुसार, दण्डादेश को इस सीमित सीमा तक संशोधित किया गया।

चंद्रप्पा बनाम कर्नाटक राज्य (2007) 4 एससीसी 415:*[2007] 2 एससीआर 630;* *महताब सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (*2009) 13 एससीसी 670:[2009] 5 एससीआर 848; *एम. पी. बनाम राज्यश्यामसुंदर त्रिवेदी (*1995) 4 एससीसी 262:[1995] 1 एस. सी. आर. पूरक 44; *पश्चिम बंगाल राज्य बनाम शिव मंगल सिंह और अन्य।* ए. आई. आर 1981 एस. सी. 1917:[1982] 1 एस.सी. आर. 360; *कुलविंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य (*2007) 10 एस . सी. सी. 455:[2007] 8 एससीआर 891; *गणेश बनाम कर्नाटक राज्य (*2008) 17 एससीसी 152:[2009] 5 एससीआर 848; *जयसीलन बनाम तमिलनाडु राज्य (*2009) 12 एससीसी 275:[2009] 3 एस.सी.आर. 200; *राजस्थान राज्य बनाम मोहन लाल और अन्र।* सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णयित 2018 की आपराधिक अपील संख्या 959 दिनांक 01.08.2018 ; *सोमन बनाम केरल राज्य* (2013) 11 एससीसी 382:[2012] 11 एससीआर 1155; *एलिस्टर एंथनी परेरा बनाम महाराष्ट्र राज्य* (2012) 2 एससीसी 648:[2012] 1 एससी. आर. 145–संदर्भित।

R v Blaue [1975] 3 सभी ER 446 (CA)–संदर्भित– *रतनलाल और धीरजलाल का अपराध कानून (27 वां संस्करण)–संदर्भित।*

संदर्भित न्याय निर्णयन

[2007] 2 एससीआर 630	से संदर्भित	पैरा 22
[2009] 5 एससीआर 848	से संदर्भित	पैरा 22

[1995] 1 एससीआर 44	से संदर्भित	पैरा 24
[1982] 1 एससीआर 360	से संदर्भित	पैरा 27
[2007] 8 एससीआर 891	से संदर्भित	पैरा 27
[2009] 5 एससीआर 848	से संदर्भित	पैरा 27
[2009] 3 एससीआर 200	से संदर्भित	पैरा 27
[2012] 11 एससीआर 1155	से संदर्भित	पैरा 29
[2012] 1 एससीआर 145	से संदर्भित	पैरा 29

आपराधिक अपील क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 2008 की 385–386

1995 की आपराधिक अपील No धारा 393 और 1995 की 397 में बॉम्बे, नागपुर पीठ, नागपुर में उच्च न्यायालय के न्यायिक निर्णय और आदेश दिनांक 13.12.2007

सहित

आपराधिक अपील सं. 182–187/2009, 299/2008, 387–388/2008

आर. बसंत, धारा . नागमुथु, वरिष्ठ अधिवक्ता।, शिवाजी एम. जाधव, विष्णु पी., बृज किशोर साह, आदित्य खन्ना, पी. पार्थिबन, निकोलस चौधरी, सुश्री आस्था दीप, ए. धारा . वैरावन, प्रशांत आर. दहत, वेंकटेश्वर राव अनुमोलु, निशांत रमाकांतराव कटनेश्वरकर, सुश्री सुवर्णा गानू, अधिवक्ता।उपस्थित दलों के लिए।

न्यायालय का निर्णय दिया गया, द्वारा

एन. वी. रमना, न्यायाधीश

“महान शक्ति के साथ और बड़ी जिम्मेदारी आती है”

1. शुरुआत में यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि हमारे पुलिस बल को 'लोकतांत्रिक पुलिसिंग' की अवधारणा को विकसित करने और पहचानने की आवश्यकता है, जिसमें अपराध नियंत्रण ही एकमात्र लक्ष्य नहीं है, बल्कि इस आदेश को प्राप्त करने के साधन भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं।इसके अलावा इस मामले में घटनाओं का मोड़ हमें यहां फिर से दोहराने के लिए मजबूर करता है कि 'चाहे आप कभी भी कितने भी ऊंचे हों, कानून हमेशा आपके ऊपर होता है!'

2. ये आपराधिक अपील 1995 की आपराधिक अपील संख्या 393, 394, 395, 397, 419 और 420 में बॉम्बे, नागपुर पीठ में उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादित **संयुक्त** आदेश और निर्णय, दिनांक 13.12.2007 के खिलाफ दायर की जाती है। चूँकि घटना समान है और पक्ष व्यक्तिगत रूप से समर्थित किए गए हैं, समान होने के कारण, हमने इस संयुक्त आदेश के माध्यम से निर्णय पर विचार करने का प्रस्ताव रखा।

3. अभियोजन पक्ष का मामला संक्षेप में यह है कि दिनांक 23.06.1993 पर, पुलिस निरीक्षक (पी. आई.) नरुले **(ए–1)** ड्यूटी पर थे, जब एक हेड कांस्टेबल तेलगुडिया (पी. डब्ल्यू.–48), संबंधित पुलिस स्टेशन में काम कर रहे थे, देओलपर तीन व्यक्तियों गणेशप्रसाद, अरुणकुमार और काशीराम के साथ पी. आई. नरुले **(ए–1) के पास** आए।उन्होंने पी. आई. नरूले **(ए–1)** को सूचित किया कि वे इंडिया सन होटल में रह रहे थे और आठ दिन पहले उन्हें लूट लिया गया था।यह प्रासंगिक हो सकता है कि उन्होंने पी. आई. नरूले **(ए–1)** को सूचित किया कि उन्होंने घटना के संबंध में कोई शिकायत दर्ज नहीं कराई है।

4. उस रात आरोपी गश्ती दल में पी. आई. नरूले **(ए–1)**, सहायक पुलिस निरीक्षक यशवंत मुकाजी कराडे **(ए–2)**, उप–निरीक्षक रामभाउ विट्ठलराव काडु **(ए–3)**, पुलिस कांस्टेबल जहीरुद्दीन बशीरमिया देशमुख **(ए–4)**, नीलकंठ पांडुरंग चौरपागर **(ए–5),** नामदेव नाथूजी गणेशकर **(ए–6)**, रमेश तुकाराम भोयर **(ए–7),** अशोक भवानी गुलाम शुक्ला **(ए–8),** सुधाकर मारोतराव ठाकरे **(ए–9)** और रघुनाथ बरकूजी भक्ते **(ए–10)** के साथ गणेशप्रसाद, अरुणकुमार और काशिराम शामिल थे। एच. सी. पी. तेलगुडिया **(पीडब्लू–48)** के अजनी स्थित पुलिस लाइन के मकान पर गए। **इस बीच, माना जाता है कि एच. सी. पी. तेलगुडिया (पीडब्लू–48) को पता चला कि 'एंथनी' नाम का एक ईसाई पुरुष लूट के लिए जिम्मेदार था।हालाँकि, एच. सी. पी. तेलगुडिया (पीडब्लू–48) ने पुष्टि की कि कोई 'एंथनी' नहीं था, लेकिन माना जाता है कि उसने खुलासा किया था कि एक जॉइनिस (मृतक) पास में रहता है, जो पहले के डकैती के मामले का एक ज्ञात संदिग्ध** था।एच. सी. पी. तेलगुडिया, पुलिस दल को जॉइनस (मृतक) के आवासीय क्वार्टर में ले गया, जो रात का खाना खाने और कुछ शराब पीने के बाद पहले ही सो चुका था।

5. यह रात को लगभग 1:00 बजे पुलिस दल जॉइनस (मृतक) के घर पहुंचा।उन्हें हिरासत में ले लिया गया और उनके आवासीय आवासों की तलाशी ली गई।यह आरोप लगाया जाता है कि इस प्रक्रिया के दौरान, कुछ पुलिस कर्मियों ने जॉइनस (मृतक) की पत्नी जरीना (पीडब्लू–1) के साथ छेड़छाड़ की थी।इसके बाद, पुलिस दल ने जॉइनिस (मृतक) को बाहर बिजली के खंभे से बांध दिया और पुलिस कर्मियों ने उसे लाठियों से पीटा।बाद में जॉइनस (मृतक) और उसके परिवार के अन्य सदस्यों को रानी कोठी, हिल टॉप रेस्तरां सहित विभिन्न स्थानों पर ले जाया गया, जहां उन्हें बीच–बीच में पीटा गया।लगभग सुबह 3:55 बजे उसे वापस पुलिस स्टेशन लाया गया, जहाँ उसे दो अन्य सेल साथियों के साथ बंद कर दिया गया था।

6. 24.06.1993 की सुबह 7:30 बजे, ड्यूटी पर तैनात पुलिस कांस्टेबलों ने जॉइनिस (मृतक) को गतिहीन पाया और जांच में पाया गया कि वह सांस नहीं ले रहा था।इस बीच, मजिस्ट्रेट से पूछताछ और रासायनिक विश्लेषण करने का अनुरोध किया गया।मामले की जांच के लिए मामला राज्य सी. आई. डी. को सौंप दिया गया था।एंथनी नाम के व्यक्ति के खिलाफ भा.द.वि. . की धारा 420 के तहत अपराध संख्या 238/1993 के तहत रात 10:20 बजे जॉइनस की मृत्यु के बाद 24.06.1993 को शिकायत दर्ज की गई ।इसके बाद, पोस्टमार्टम किया गया और पी. आई. ओझा द्वारा जांच की गई। अभियुक्त पर मुकदमा चलाने के लिए सरकार द्वारा आवश्यक मंजूरी दिए जाने के बाद, जांच अधिकारी ने गलती करने वाले दस अधिकारियों के खिलाफ निम्नलिखित तरीके से आरोप लगाए –

1.) कि आप सभी अभियुक्तों ने 23.06.1993 पर लगभग 23.00 बजे में अपराध शाखा के रोजनामचा रजिस्टर में क्रम संख्या 26 पर प्रविष्टि की कि आप अपराध शाखा कार्यालय से रात की गश्त के लिए निकले और उसके बाद गणेशप्रसाद ठाकुर, अरुणकुमार गुप्ता, काशीराम बरेथिया, हेड कांस्टेबल माधोराव तेंगुरिया के साथ पुलिस वैन क्र. एमएच–12/9887 में गए और मृतक जॉइनस एडम येलामती के घर में लगभग 00:45 बजे 24.06.1993 पर जबरन प्रवेश किया।मृतक ने अपना अंडरवियर और बनियन पहना हुआ था और अपने घर में सो रहा था।आप सभी अभियुक्तों ने अपने समान इरादे को आगे बढ़ाते हुए मृतक को उसके घर से बाहर निकाला और उसे सड़क पर ले गए और उसे रस्सी से बिजली के खंभे से बांध दिया और उसे छड़ी से बेरहमी से पीटा गया।मृतक को उक्त अपराध शाखा वाहन में बिठाया गया और उसे अपराध शाखा के कार्यालय लाया गया।आपने उसे निर्वस्त्र कर दिया और अपराध शाखा कायालय में मृतक को लाठी से बुरी तरह पीटा।उस समय आप सभी को पता था कि इस तरह की बेरहमी से पिटाई से मृतक की मौत हो जाएगी।आपने उसे अपराध शाखा में कोई अपराध दर्ज किए बिना सुबह लगभग 3:55 बजे तक हवालात में रखा।सुबह मृतक मृत पाया गया।आपने जॉइनस एडम येल्लामती की आपराधिक मानव वध की और इस तरह आप सभी ने धारा 302 सहपथित धारा 34 के तहत दंडनीय अपराध किया। जो मेरे संज्ञान में है।

2.) दूसरा, कि आप सभी आरोपी अपने सामान्य इरादे को आगे बढ़ाते हुए मृतक जॉइनस एडम येल्लामती के घर में लगभग 00.45 घंटे में 24.06.1993 पर प्रवेश किया और मृतक की पत्नी ज़रीना की व्यक्तिगत खोज करने का नाटक किया और खोज करने के बहाने ज़रीना के स्तनों को छुआ।इसके बाद, आपने उसे अपनी पुलिस वैन में बिठाया और उसकी शील भंग करने के इरादे से उसके शरीर पर घूंसे भी मारे।इसके बाद, उसे आपके अपराध शाखा कार्यालय में लाया गया और आपने जरीना की शील भंग करने के इरादे से उसकी पेटीकोट में अपना हाथ डाला और इस तरह के हमले द्वारा आप सभी ने धारा 354 सहपठित धारा 34 भारतीय दंड संहिता के तहत दंडनीय अपराध किया। जो मेरे संज्ञान में है।

3.) तीसरा, कि आप सभी अभियुक्तों ने अपने समान इरादे को आगे बढ़ाते हुए, मृतक के दो बच्चों, 10 साल की कुमारी स्टेनलोस और 8 साल के लड़के जॉर्ज और ज़रीना के भाई रिचर्ड अब्राहम, उम्र 19 वर्ष और स्टेनली पैट्रिक नाम के एक अन्य चचेरे भाई उम्र 19 वर्ष को सदोष परिरोध में लेकर ।भारतीय दंड संहिता की धारा 342 के तहत दंडनीय अपराध किया जो मेरे संज्ञान में है।

4.) चौथा, कि आप सभी अभियुक्तों ने अपने समान इरादे को आगे बढ़ाते हुए, उपरोक्त दिन, तिथि, समय और स्थान पर, स्वेच्छा से 42 वर्ष की आयु के जॉइनिस एडम येल्लामती और जॉइनिस येल्लामती की पत्नी जरीना को उक्त जॉइनिस येल्लामती और जॉइनिस येल्लामती की पत्नी जरीना से कुछ ऐसी जानकारी वसूलने के उद्देश्य से चोट पहुंचाई, जिससे होटल "इंडिया सन", नागपुर में गणेशप्रसाद बाबूलाल ठाकुर और एक अरुणकुमार गुप्ता के संबंध में की गई धोखाधड़ी के अपराध का पता चल सकता है और इस तरह आपने धारा 330 सहपठित धारा 34 भारतीय दंड संहिता के तहत दंडनीय अपराध किया, जो मेरे संज्ञान में है।

5.) पाँचवाँ, कि आप सभी अभियुक्तों ने उपरोक्त दिन, तिथि, समय और स्थान पर अपने सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए जॉइनिस एडम येल्लामती और ज़रीना पर हमला किया, जो जोइनिस एडम येल्लामती और ज़रीना का अपमान करने के लिए इस तरह का हमला किया और इस तरह धारा 355 सहपठित धारा 34 भारतीय दंड संहिता के तहत दंडनीय अपराध किया। जो मेरे संज्ञान में है।

7. सभी अभियुक्तों ने निर्दोष होने का दावा किया और विचारण का दावा किया।1993 के सत्र मामला सं. 416 में सत्र न्यायालय ने दिनांक 22.09.1995 के आदेश द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किया –

आरोपीगण	**धारा**	**दण्डादेश/दोषमुक्ति**
आरोपी क्र.1–10	302 भा.द.वि.	दोषमुक्त
आरोपी क्र.1–10	330 सहपठित धारा 34 भा.द.वि.	उनमें से प्रत्येक को 500 रुपये के जुर्माने का भुगतान करने के लिए ओर 3 साल के कठोर कारावास दिया गया ओर 500 रुपये का भुगतान नहीं करने पर 3 माह का अतिरिक्त कठोर कारावास भुगताए जाने का आदेश दिया गया।
आरोपी क्र.1–10	354 सहपठित धारा 34 भा.द.वि. .	उनमें से प्रत्येक को 300 रुपये के जुर्माने का भुगतान करने के लिए ओर 6 माह के कठोर कारावास दिया गया ओर 300 रुपये का भुगतान नहीं करने पर 3 माह का अतिरिक्त कठोर कारावास भुगताए जाने का आदेश दिया गया।
आरोपी क्र.1–10	355 सहपठित धारा 34 भा.द.वि.	उनमें से प्रत्येक को 300 रुपये के जुर्माने का भुगतान करने के लिए ओर 3 वर्ष के कठोर कारावास दिया गया ओर 300 रुपये का भुगतान नहीं करने पर 1 माह का अतिरिक्त कठोर कारावास भुगताए जाने का आदेश दिया गया।
आरोपी क्र.1–10	342 सहपठित धारा 34 भा.द.वि.	उनमें से प्रत्येक को 300 रुपये के जुर्माने का भुगतान करने के लिए ओर 3 वर्ष के कठोर कारावास दिया गया ओर 300 रुपये का भुगतान नहीं करने पर 1 माह का अतिरिक्त कठोर कारावास भुगताए जाने का आदेश दिया गया।

सजाओं को साथ–साथ चलाने का आदेश दिया गया था।

8. संक्षिप्त में दोषमुक्त/दोषसिद्धि के लिए विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारण इस प्रकार हैं –

i. यह कि डॉ. केवलिया/पीडब्लू–49 के द्वारा साक्ष्य में दी गई प्रदर्श 296, के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि मृतक की मृत्यु दम घुटने के कारण हो सकती है।

ii. यह कि पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट या चिकित्सा साक्ष्य स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि कॉलम संख्या 17 में चोटों का दम घुटने से हुई मौत से कोई संबंध नहीं था।

iii. यह कि चोटों में साधारण चोटें आईं और किसी व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त नहीं थीं।

iv. यह कि अभियुक्त–अधिकारियों की उपस्थिति स्वीकार की गई है और उसे हटाया नहीं जा सकता है क्योंकि यह रोजनामचा रजिस्टर द्वारा साबित होता है।

v. अन्य साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य से यह स्पष्ट था कि सूचना निकालने के लिए पुलिस अधिकारी द्वारा चोटें कारित की गईं, जो पूरी तरह से भा.द.वि. की धारा 330 के तहत आती हैं।

9. विचारण न्यायालय के आदेश से आहत होकर आरोपी–भास्कर [ए–1], यशवंत [ए–2], रघुनाथ [ए–10] ने 1995 की आपराधिक अपील संख्या 393, जहीरुद्दीन [ए–4], नीलकंठ [ए–5] और नामदेव [ए–6] ने 1995 की आपराधिक अपील संख्या 394, रमेश [ए–7], अशोक भवानी गुलाम शुक्ला [ए–8], सुधाकर [ए–9] ने 1995 की आपराधिक अपील संख्या 395, रामभाऊ [ए–3] ने उच्च न्यायालय के समक्ष 1995 की आपराधिक अपील संख्या 397 दायर की।दूसरी ओर, महाराष्ट्र राज्य ने भी दोषमुक्ति के फैसले के खिलाफ 1995 की आपराधिक अपील संख्या 419 और सजा बढ़ाने के लिए 1995 की आपराधिक अपील संख्या 420 के रूप में आपराधिक अपील दायर की।

10. दिनांक 13.12.2007 के आदेश द्वारा, उच्च न्यायालय ने राज्य द्वारा आपराधिक अपील संख्या 419 एवं 420/1995 के रूप में की गई अपील को खारिज कर दिया, लेकिन आंशिक रूप से अभियुक्त अधिकारी द्वारा प्रस्तुत अपील स्वीकार करते हुए आरोपी क्र. 1–9 को धारा 354, 355, 342 सहपठित धारा 34 के तहत दंडनीय अपराधों से दोषमुक्त कर दिया गया परंतु उन्हें भा.द.वि. की धारा 330 के तहत दोषसिद्धि को बरकरार रखा। इसके अलावा, रघुनाथ बरकुजी भक्त (ए–10) को सभी अपराधों से बरी कर दिया गया था।उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित आधारों पर उपरोक्त आदेश पारित किया

i. यह कि मृतक को लगी चोटों की पुष्टि पोस्टमार्टम रिपोर्ट से होती है, जिसकी पुष्टि जांच के दौरान ली गई तस्वीरों से होती है।

ii. इसमें अभियुक्त अपीलार्थियों को संदेह का लाभ देते हुए कि मरत्यु का कारण अभियुक्त को लगी चोटों का परिणाम नहीं था।

iii. भले ही पीडब्लू–1 [जरीना] के साक्ष्य में कई विसंगतियां हैं, लेकिन अदालत ने झूठ को सच्चाई से अलग कर दिया।

iv. भा.द.वि. . की धारा 355 के तहत वह अपराध उचित संदेह से परे साबित नहीं होता है क्योंकि इस संबंध में स्पष्ट विसंगतियां हैं।

v. कि अभियुक्त ए–10 की उपस्थिति साबित नहीं हुई है और उसे संदेह का लाभ दिए जाने की आवश्यकता है, जिससे उसे बरी करना अनिवार्य हो जाता है।

11. उच्च न्यायालय के आदेश से अभी भी व्यथित आरोपी–यशवंत [ए–2] और भास्कर [ए–1] ने 2008 की आपराधिक अपील संख्या 385 दायर की, रामभाऊ [ए–3] ने 2008 की आपराधिक अपील संख्या 386 दायर की, जहीरुद्दीन [ए–4], नीलकंठ [ए–5] और नामदेव [ए–6] ने 2008 की आपराधिक अपील संख्या 387 दायर की, रमेश [ए–7] और अशोक भवानी गुलाम शुक्ला [ए–8] ने

2008 की आपराधिक अपील संख्या 388 दायर की, सुधाकर [ए–9] ने 2008 की आपराधिक अपील संख्या 299 दायर की, महाराष्ट्र राज्य ने 2009 की आपराधिक अपील संख्या 182–187 दायर की।इस न्यायालय ने दिनांक 22.02.2008 के आदेश द्वारा, इन मामलों में नोटिस जारी करते समय, अपीलार्थी–अभियुक्त को सजा बढ़ाने के लिए कारण दर्शाएँ नोटिस भी जारी किया गया था, इसका संज्ञान लेना परिप्रेक्ष्य से बाहर नहीं होगा कि अभियुक्त ए–1 की इन अपीलों को दायर करने के बाद मृत्यु होना बताई गई है, तदनुसार, अभियुक्त ए–1 का नाम अलग कर दिया गया था और उसके खिलाफ दोषसिद्धि समाप्त हो गई थी।

12. जब मामले पर बहस की गई, तो विद्वान वरिष्ठ वकील, श्री आर. बसंत और श्री धारा नागमुथु ने मिलकर तर्क दिया कि –

a. यह कि भा.द.वि. . की धारा 302 के लागू न होने के कारण, नीचे दी गई अदालत की समवर्ती राय को बाधित करने की आवश्यकता नहीं है।
b. उच्चतर आदेशों का बचाव अन्य अभियुक्त अधीनस्थ अधिकारियों के लिए लागू था।
c. यह कि किस प्रकार से भा.द.वि. की धारा 330 के तहत आरोप इस मामले में आकर्षित हो सकते थे।
d. वैकल्पिक रूप से, वह दलील देता है कि केवल भा.द.वि. . की धारा 323 बनाए रखने योग्य हो सकती है जो पहले से गुजर चुकी अवधि की सजा के लिए पर्याप्त होगी।
e. किसी भी मामले में वे अनुरोध करते हैं कि अभियुक्त ए–10 के बरी होने के फैसले में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए।

13. दूसरी ओर, महाराष्ट्र राज्य के वकील श्री निशांत रमाकांतराव कटनेश्वरकर ने हमारे ध्यान में लाया है कि पीडब्लू–49 के साक्ष्य, जिन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि मृत्यु का प्रभाव चोटों का संचयी प्रभाव था।इसके अलावा, यह तर्क दिया जाता है कि चोटों की संख्या कारण संबंध को साबित करने के लिए पर्याप्त है।अंत में, राज्य ने तर्क दिया है कि हिरासत में यातना को गंभीरता से लेने और उचित रूप से दंडित करने की आवश्यकता है।वैकल्पिक रूप से, राज्य भा.द.वि. . की धारा 304 भाग II के तहत आरोप लगाने के लिए दबाव डालना चाहता है, यदि भा.द.वि. . की धारा 302 नहीं बनती है।

14. दोनों पक्षों के विद्वान वकीलों को सुनने और अभिलेख पर दस्तावेजों को पढ़ने के बाद, हमारी राय है कि हमें इसमें केवल चार प्रश्नों को संबोधित करने की आवश्यकता है, क्योंकि उच्च न्यायालय ने अन्य प्रश्नों पर पर्याप्त रूप से विचार किया है, जिनमें हमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है।पहला सवाल यह है कि क्या ऊपर वर्णित घटना आपराधिक मानव वध के बराबर है ताकि भा.द.वि. . की धारा 302 को आकर्षित किया जा सके?

15. जिन परिस्थितियों में यह विवाद उत्पन्न हुआ, उन्हें समझने के लिए पृष्ठभूमि तथ्यों का संक्षिप्त वर्णन आवश्यक हो सकता है।कि पीडब्लू–21 (किशन खडोडे) द्वारा यह स्थापित किया गया है कि जिस लॉक–अप में जॉइनिस (मृतक) पाया गया था, वह घुटन भरा था, गंदा था और जिस स्थान पर मृतक का शव मिला था, वहां बोतल गार्ड के बीज उल्टी किए हुए पाए गए थे।पोस्टमॉर्टम करने वाले डॉक्टर पीडब्लू–49 (डॉ. केवलिया) का मानना है कि मौत का कारण दम घुटना था, क्योंकि शौच, मूत्रमार्ग से स्राव आदि जैसे संकेत थे। भले ही पीडब्लू–49 को उल्टी के कारण दम घुटने के पहलू पर विस्तृत

प्रतिपरीक्षा के अधीन नहीं किया गया था, हालाँकि, डॉक्टर उल्टी की सामग्री से इस तरह के दम घुटने के कारण दम घुटने की संभावना को स्वीकार करते हैं।दूसरी परिस्थिति यह थी कि मृतक नशे की हालत में पाया गया था, जो चिकित्सा साक्ष्य के अनुसार तनाव के प्रति प्रतिरोध को कम करता है।इसके अलावा, यह रिकॉर्ड में है कि मृतक पहले तपेदिक से पीड़ित था।

16. यह रिकॉर्ड की बात है कि नीचे दी गई दोनों अदालतों ने एक समवर्ती दृष्टिकोण अपनाया है कि ऊपर वर्णित अपराध आपराधिक मानव वध नहीं था। मौत के कारण के रूप में दम घुटना था और यह साबित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं था कि चोटें मौत का कारण थीं।यह सुस्थापित है कि इसे हत्या कहने के लिए, इसे प्रथम द्रष्टया आपराधिक मानव वध होने की आवश्यकता है, यानी कि सभी हत्याएं आपराधिक मानव वध हैं, लेकिन इसके विपरीत सभी मामलों में सच नहीं हो सकता है।इसलिए, हमें यह पता लगाने की आवश्यकता है कि क्या इसमें प्रथम द्रष्टया आपराधिक मानव वध का मामला बनता है ।इस संदर्भ में, हमें शुरुआत में भा.द.वि. . की धारा 299 का अवलोकन करने की आवश्यकता है –

> 299. **आपराधिक मानव वध**– जो भी ऐसा करके मृत्यु का कारण बनता है। मृत्यु कराने के इरादे से, या ऐसी शारीरिक चोट पहुँचाने के इरादे से जो मृत्यु का कारण बन सकती है, या इस ज्ञान के साथ कि इस तरह के कार्य से मृत्यु होने की संभावना है, आपराधिक मानव वध का अपराध करता है।
>
> **(महत्व दिया गया)**

17. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, कार्यकारण यह निर्धारित करने के लिए एक महत्वपूर्ण घटक है कि क्या कोई व्यक्ति प्रथम द्रष्टया आपराधिक मानव वध करता है।कारण का सीधा सा अर्थ है "आचरण और परिणाम के बीच कारण संबंध"।इस संबंध में हमें यह आकलन करने की आवश्यकता है कि क्या पक्षों की दलीलें देश के कानून की जांच में टिक सकती हैं।भा.द.वि. . की धारा 299 दो प्रकार के कारणों को इंगित करती है, एक तथ्यात्मक कारण और दूसरा कानूनी कारण।तथ्यात्मक कारण पर आते हुए, यह तथ्य की बात है कि क्या अभियुक्त की कार्रवाई व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनी।लेकिन दूसरा पहलू स्वयं से संबंधित है, क्या मृत्यु को कानूनी रूप से जिम्मेदार होने के रूप में अभियुक्त की कार्रवाई के लिए पर्याप्त रूप से आरोपित किया जा सकता है।हमारी सुविचारित राय में यह मामला कारण संबंध के दूसरे चरण में बदल जाता है जिसमें, क्या पुलिस अधिकारियों द्वारा की गई चोटों को जॉइनस की मृत्यु का कारण माना जा सकता है?

18. सामान्य कानून के तहत यह सुस्थापित सिद्धांत है कि *"उनके पीड़ित को उसी रूप में प्राप्त करें जैसे उन्हें पाते हैं" (take their victim as they find them)* ',ा का अर्थ है' एक व्यक्ति जो कोई ऐसा कार्य/चूक करता है जो किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु को तेज करता है, जब कार्य किया जाता है या चूक की जाती है, जो किसी अन्य कारण से उत्पन्न किसी विकार या बीमारी के तहत श्रम कर रहा है, यह माना जाता है कि उसने उस अन्य व्यक्ति की आपराधिक मानव वध की है।इस सिद्धांत को भा.द.वि. . की धारा 299 के स्पष्टीकरण 1 के तहत स्पष्ट रूप से निहित किया गया है। इस पहलू पर विवरण में गए बिना क्योंकि यह कई कारणों का मामला नहीं है जिस पर हमें विचार करने की आवश्यकता है, बल्कि यह

एक ऐसा मामला है जिसमें मृतक की मृत्यु दम घुटने से हो गई थी। उस समय से घंटों बाद जब चोट लगी थी, जो यहाँ मृत्यु के कारण का एक स्वतंत्र कारण है।

19. जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है, कई अन्य परिस्थितियाँ उपलब्ध हैं जो मृत्यु के कारण को अपीलार्थी अधिकारियों की कार्रवाइयों से अलग करती हैं।यह रिकॉर्ड में है कि पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में उल्लिखित चोटें स्पष्ट रूप से इंगित करती हैं कि इन चोटों की प्रकृति गंभीर नहीं थी।सिर की चोट खोपड़ी की हड्डी में कोई आंतरिक फ्रैक्चर नहीं दिखाती है।इसलिए, जब तथ्यों पर, नीचे की अदालतों द्वारा समवर्ती रूप से यह अनुमान लगाया जाता है कि मृत्यु का कारण दम घुटना था, तो हम इसमें एक अलग तथ्यात्मक निष्कर्ष को स्वीकार करने का कोई कारण नहीं देखते हैं, क्योंकि यह विकृत नहीं है।

20. इसके अलावा, हम इस पहलू पर उच्च न्यायालय के तर्क से सहमत हैं कि पीडब्लू–1 (जरीना) अपने बयानों में पूरी तरह से ईमानदार नहीं रही है।उसने कभी–कभी अति–ईर्ष्या से कथन किया है, जिससे हमें उसके साक्ष्य को स्वीकार करने में सतर्क रहने के लिए मजबूर किया गया है।इसके अलावा किसी भी गवाह ने चोटों के पहलू और वे कैसे कारित हुए, इस बारे में स्पष्ट रूप से गवाही नहीं दी है, सिवाय खाली बयानों के कि 'मृतक जॉइनस को पीटा गया था'।इसके अलावा हम ध्यान दे सकते हैं कि आसपास की परिस्थितियाँ भी हमारे निष्कर्षों को मजबूत करती हैं जैसे कि सबसे पहले, पीडब्लू–21 (सेल–कैदी) और पीडब्लू–42 (हेड कांस्टेबल) के बयानों के अनुसार मृतक की स्थिति अच्छी बताई गई थी, हालांकि वह तपेदिक से पीड़ित था, जब उसे लॉक–अप में भर्ती किया गया था।दूसरा, जॉइनस (मृतक) को गिरफ्तार किए जाने पर वह बहुत नशे में था और तीसरा, दम घुटने का पहलू जो जॉइनस की मृत्यु और इसमें अपीलकर्ताओं द्वारा की गई चोटों के बीच कारण संबंध की श्रृंखला को तोड़ने का एक महत्वपूर्ण कारण है।

21. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, गलती करने वाले अधिकारियों द्वारा मृतक को हुई चोटों और मृत्यु के बीच कारण संबंध जुड़ा नहीं है, इसलिए भा.द.वि. . की धारा 299 आकर्षित नहीं होती है। तदनुसार, भा.द.वि. . की धारा302 या 304 को आकर्षित करने का कोई सवाल ही नहीं है।

22. इस न्यायालय ने मामलों की श्रंखला में यह विचार रखा है कि तथ्यों के निष्कर्ष के संबंध में, जब दो न्यायालयों ने अभियुक्त–अपीलार्थी को भा.द.वि. . की धारा 302 के तहत आरोपों से बरी कर दिया है, तो इस न्यायालय पर तथ्यात्मक निष्कर्ष को उलटना उचित नहीं होगा, जब तक कि निचली अदालतों द्वारा लिया गया दृष्टिकोण अत्यधिक असंभव या अनुचित या विकृत नहीं दिखाया जाता है। हालांकि राज्य के लिए विद्वान वकील ने यह तर्क देने की कोशिश की है कि चोटों का संचयी प्रभाव मृत्यु के लिए जिम्मेदार था, लेकिन दूसरी ओर चिकित्सा साक्ष्य स्वयं दम घुटने के कारण मृत्यु की उच्च संभावना की पुष्टि करते हैं।इसके अलावा हमारे सामने यह दर्शाने के लिए कोई सामग्री नहीं लाई गई है कि निचली अदालतों ने एक विकृत दृष्टिकोण अपनाया था।इस संदर्भ में, जब दो उचित विचार संभव हैं, तो समवर्ती दोषमुक्ति को उलटना उचित नहीं होगा।**चंद्रप्पा बनाम कर्नाटक राज्य,** (2007) 4 धारा . सी. सी. 415; **महताब सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**, (2009) 13 धारा . सी. सी. 670]।

23. यह ध्यान रखना संदर्भ से बाहर नहीं हो सकता है कि हिरासत में यातना के मामलों पर मुकदमा चलाना आम तौर पर मुश्किल होता है क्योंकि रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूत पर्याप्त नहीं हो सकते हैं।यह इस संदर्भ में है कि विधि आयोग ने 1985 में प्रकाशित अपनी 113 वीं रिपोर्ट में साक्ष्य अधिनियम में धारा

114–बी को शामिल करने की सिफारिश की थी, लेकिन इसे कभी भी वैधानिक कानून में शामिल नहीं किया गया था।इसके अलावा यह न्यायालय मध्य प्रदेश राज्य बनाम श्यामसुंदर त्रिवेदी, 1995 (4) एससीसी. 262 ने इस तरह के संशोधन पर विचार करने के लिए संसद से अपील की।

24. दूसरा प्रश्न उच्चतर आदेश के बचाव के संबंध में है या कुख्यात रूप से अभियुक्त–अपीलकर्ताओं (अधीनस्थ अधिकारियों) द्वारा अनुरोध किए गए 'नूरेमबर्ग बचाव' के रूप में जाना जाता है।सबसे पहला ज्ञात उदाहरण, जिसमें इस तरह के बचाव का अनुरोध एक अंतरराष्ट्रीय तदर्थ न्यायाधिकरण के समक्ष किया गया था, का पता वर्ष 1474 में ड्यूक ऑफ बरगंडी के आदेश पर ब्रेसाच पर कब्जा करने के लिए पीटर वॉन हेगेनबैक के मुकदमे से लगाया जा सकता है[ii]। हम इस तथ्य से अवगत हैं कि भा.द.वि. . इस तरह के बचाव की अनुमति देता है यदि भा.द.वि. . की धारा 76 के तहत प्रदान की गई शर्तों को पूरा किया जाता है।इस न्यायालय की तीन–न्यायाधीशों की पीठ **पश्चिम बंगाल राज्य बनाम शेव मंगल सिंह और अन्य** ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 1917 में यह पाया है:

> दंड संहिता की धारा 76 के तहत कहा गया है कि ऐसा कुछ भी अपराध नहीं है जो किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाता है, या जो तथ्य की गलती के कारण किया जाता है, न कि अच्छे विश्वास में कानून की गलती के कारण जो खुद को ऐसा करने के लिए कानून द्वारा बाध्य मानता है।उस खंड के चित्रण में कहा गया है कि यदि कोई सैनिक अपने वरिष्ठ अधिकारी के आदेश से कानून के आदेशों के अनुरूप भीड़ पर गोली चलाता है, तो वह कोई अपराध नहीं करता है।धारा के प्रावधानों को लागू करने का अवसर तत्काल मामले में इस सवाल के बाद से उत्पन्न नहीं होता है कि क्या आरोपी इस तथ्य की गलती के कारण सद्भावना में विश्वास करता है कि वह उस कार्य को करने के लिए कानून द्वारा बाध्य था जो कथित रूप से किया गया है। एक अपराध का गठन करता है, केवल तभी उत्पन्न होगा जब इस मामले में प्रासंगिक सीमा तक, वरिष्ठ अधिकारी का आदेश या हुक्म उचित नहीं है या अन्यथा गैरकानूनी है।

25. यह रिकॉर्ड की बात है कि आरोपी ए–1 का निधन हो गया है और उसके खिलाफ मामला समाप्त हो गया है।अन्य अभियुक्त–अपीलार्थियों ने, इस स्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से, एक विचार के बाद बचाव पक्ष में दलील दी है कि वे केवल अभियुक्त ए–1 के आदेशों का पालन कर रहे थे।शुरुआत में हम संकेत दे सकते हैं कि यह केवल यह नहीं है कि अभियुक्त–अपीलकर्ताओं को यह साबित करना है कि उन्होंने वरिष्ठ अधिकारी (अभियुक्त ए–1) के आदेश का पालन किया है, बल्कि उन्हें न्यायालय के समक्ष यह भी साबित करने की आवश्यकता है कि उपरोक्त अपीलकर्ताओं को ईमानदारी से विश्वास था कि अभियुक्त ए–1 द्वारा जारी किए गए आदेश वैध थे।हालाँकि, हमारा ध्यान अदालतों के समक्ष किसी भी तर्क या इस आशय के रिकॉर्ड पर साक्ष्य की ओर नहीं खींचा गया कि अभियुक्त–अपीलार्थी केवल अपने वरिष्ठों के आदेशों पर इस विश्वास पर कार्य कर रहे थे कि ऐसे आदेश वैध थे।शुरू से ही यह उनका मामला भी नहीं था कि अभियुक्त–अपीलकर्ता तथ्यों और परिस्थितियों से अवगत नहीं थे, बल्कि उन सभी ने पूरी जानकारी और भागीदारी के साथ एक जांच दल के रूप में शुरुआत की।अभिलेख के अवलोकन पर, हम ध्यान दे सकते हैं कि यह तर्क केवल इस न्यायालय के समक्ष फिर से मुकदमे की मांग करने के लिए लिया गया है और इस तरह के प्रयास को यहां विचार में नहीं लिया जा सकता है।

26. तीसरा सवाल आरोपी ए–10 (रघुनाथ भक्त) के बरी होने से संबंधित है।अभियुक्त ए–10 के व्यक्तिगत दायित्व से निपटना आवश्यक होगा, क्योंकि वह कहता है कि वह जाँच दल के साथ मौजूद नहीं था।हालांकि कुछ सबूत जांच दल के साथ उसकी उपस्थिति की ओर इशारा करते हैं, लेकिन तथ्य यह है कि अन्य सभी अभियुक्तों ने सर्वसम्मति से कहा है कि ए–10 उनके साथ नहीं था क्योंकि वह जांच के दौरान बीमार पड़ गया था और तदनुसार घर चला गया था।हमें उपरोक्त आधार को ध्यान में रखते हुए अभियुक्त ए–10 के दायित्व की जांच करने की आवश्यकता है।

27. यह हमारी आपराधिक कानून परंपरा में बनाया गया है कि अदालतों की जिम्मेदारी है कि वे भूसे से गेहूं को अलग करें और सच्चाई को बाहर निकालें।यह ध्यान रखना संदर्भ से बाहर नहीं हो सकता है कि कानूनी उक्ति 'falsus in uno, falsus in omnibus' (एक बात में मिथ्या तो सभी बात में मिथ्या) भारत में लागू नहीं होती है, जिससे अदालतों को सत्य को झूठ से अलग करने का आदेश दिया जाता है।[**कुलविंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य** (2007) 10 एस .सी. सी. 455; **गणेश बनाम कर्नाटक राज्य**, (2008) 17 एस. सी. सी. 152; **जयसीलन बनाम तमिलनाडु राज्य**, (2009) 12 एस. सी. सी. 275] के संदर्भ में यह असामान्य नहीं है कि कुछ मामलों में सभी अभियुक्तों को दोषी ठहराते हुए देखने के लिए ईर्ष्या में गवाह तथ्यों को बढ़ा सकते हैं। या उन्हें मोड़ दें।उन मामलों में, अदालतों के लिए यह आवश्यक है कि वे 'दोषी ठहराने के लिए जल्दबाजी' न करें, बल्कि न्याय को बनाए रखें।सभी अभियुक्तों के बयानों के साथ–साथ पीडब्लू–41 (चालक विजय थेंगडे), पीडब्लू–48 (एचसी तेलगुडिया) और पीडब्लू–66 (आई. ओ. डिप्टी एस.पी. गोडबोले) के साक्ष्य से यह स्पष्ट है गश्ती दल के दौरान और उसके बाद ए–10 की उपस्थिति के बारे में एक उचित संदेह मौजूद है।इसलिए, हम इस पहलू पर भी उच्च न्यायालय के निष्कर्षों को बाधित करने के इच्छुक नहीं हैं।

28. चौथा प्रश्न, जिस पर हमें विचार करने की आवश्यकता है, भा.द.वि. . की धारा 330 के तहत सजा से संबंधित है। शुरुआत में, हमें यह बताने की आवश्यकता है कि हमें उपरोक्त धारा के तहत अभियुक्त की दोषसिद्धि में हस्तक्षेप करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं मिलती है, सिवाय सजा की मात्रा के, जिसे हमें निर्धारित करने की आवश्यकता है।

29. हाल ही में, सोमन बनाम केरल राज्य, (2013) 11 धारा . सी. सी. 382 और एलिस्टर एंथनी परेरा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2012) 2 धारा . सी. सी. 648 के न्याय द्रष्टनतों का अवलंबन लेते हुए **राजस्थान राज्य बनाम मोहन लाल और अन्य**[iii] में इस खंडपीठ ने यह निष्कर्ष निकाल है कि। उपरोक्त टिप्पणियों से यह स्पष्ट है कि सजा देने का सिद्धांत प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।हालाँकि, सजा उचित, पर्याप्त, न्यायसंगत, आनुपातिक और अपराध की प्रकृति और गंभीरता और अपराध करने के तरीके के अनुरूप होनी चाहिए।सजा सुनाते समय अपराध की गंभीरता, अपराध के उद्देश्य, अपराध की प्रकृति और अन्य सभी उपस्थित परिस्थितियों को ध्यान में रखना होगा।अदालत सजा सुनाते समय लापरवाही नहीं बरत सकती, क्योंकि सजा सुनाने की प्रक्रिया में अपराध और अपराधी दोनों समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।अदालतों को यह देखना चाहिए कि जनता न्यायिक प्रणाली में विश्वास न खोए।अपर्याप्त सजा देने से न्याय प्रणाली को अधिक नुकसान होगा और ऐसा राज्य बन सकता है जहां पीड़ित न्यायिक प्रणाली में विश्वास खो देता है और निजी प्रतिशोध का सहारा लेता है।

30. चित्रित तथ्यों से यह स्पष्ट है कि पुलिस को पता था कि मृतक की पहचान उस व्यक्ति से अलग थी, वे शुरू में जांच करना चाहते थे।जिस तरह से मृतक और उसके परिवार के सदस्यों को हिरासत में लिया गया, वह विशुद्ध रूप से अराजकता को दर्शाता है और पुलिस के आचरण के अनुकूल नहीं है।लाहौर उच्च न्यायालय ने लाल मोहम्मद बनाम सम्राट, ए. आई. आर. 1936 एल. ए. एच. 471 में कहा था कि निवारक प्रभाव के लिए धारा 330 के तहत अपराध को निम्नलिखित तरीके से कठोर दंड के साथ व्यवहार करने की आवश्यकता थी –

> मेरी राय में, हालांकि, किसी अपराध की जाँच में लगे जिम्मेदार पुलिस अधिकारियों द्वारा इस तरह का आचरण, कानून द्वारा ज्ञात सबसे गंभीर अपराधों में से एक है।इस मामले में थर्ड डिग्री तरीकों या वास्तविक यातना या पिटाई का परिणाम यह हो कि निर्दोष व्यक्तियों को अच्छी तरह से दोषी ठहराया जा सके, उन्हें गलत रूप से संस्वीकृति को मजबूर किया जा सके। आपराधिक अदालतों में लगभग हर मामले में जिसमें एक संस्वीकृति दर्ज की जाती है, बचाव पक्ष द्वारा यह आरोप लगाया जाता है कि पुलिस ने इस तरह के तरीकों का सहारा लिया है।हालाँकि, यह शायद ही कभी होता है कि इस तरह का अपराध साबित हो या हो सकता है।यह स्पष्ट रूप से न्यायालयों का कर्तव्य है जब इस तरह का कोई मामला साबित हो कि वे ऐसे दण्डादेश पारित करें जिनका निवारक प्रभाव हो सकता है।

31. रतनलाल और धीरजलाल के अपराध कानून (27 वीं संस्करण) में, भा.द.वि. . की धारा 330 के तहत सजा पर चर्चा करते हुए रचियाता ने कहा –

> **अपराध की जाँच में लगे एक जिम्मेदार पुलिस अधिकारी द्वारा चोट पहुँचाना कानून द्वारा ज्ञात सबसे गंभीर अपराधों में से एक है और अपराधी को निवारक सजा दी जानी चाहिए।**
>
> (जोर दिया गया)

32. यहाँ चित्रित घटनाओं का तथ्यात्मक वर्णन पुलिस की ज्यादती की द्वेषपूर्ण घटनाओं का वर्णन करता है।जॉइनस को एक ऐसे अपराध के लिए झूठा फंसाने का उद्देश्य जिससे वह अनभिज्ञ था, अपराधों की जांच करने वाले पुलिस अधिकारियों के लिए उपयुक्त नहीं था।जिस तरह से जॉइनस को देर रात उसके घर से जांच के लिए ले जाया गया, वह इस देश द्वारा अपने नागरिक को दिए गए बुनियादी अधिकारों की अनदेखी करता है।यह रिकॉर्ड में है कि व्यक्ति को लगी चोटें संस्वीकृति निकालने के लिए थीं।इस तरह की कार्रवाई करने के लिए अभियुक्त अधिकारियों की दुर्भावनापूर्ण मंशा उपरोक्त कथन से बड़ी है, जिसके लिए आगे विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

33. चूंकि इस मामले में पुलिस कानून का उल्लंघन करने वाली होती है, जिसकी कानून की रक्षा करने और उसे बनाए रखने की प्राथमिक जिम्मेदारी थी, इसलिए इस तरह के उल्लंघन के लिए सजा को आनुपातिक रूप से कठोर होना अनिवार्य किया जाता है ताकि प्रभावी निवारक प्रभाव हो और समाज में विश्वास पैदा हो।यह याद दिलाना संदर्भ से बाहर नहीं हो सकता है कि महाराष्ट्र राज्य का आदर्श वाक्य पुलिस "सद्रक्षण्य खलानिग्रहण्य" (संस्कृतः" अच्छाई की रक्षा करने के लिए और बुराई को दंडित करने के लिए "), जिसका सम्मान करने की आवश्यकता है।जिन लोगों से आपराधिक कानून का प्रशासन करने का आह्वान किया जाता है, उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि उनका कर्तव्य न केवल उनके सामने व्यक्तिगत

अभियुक्त के प्रति है, बल्कि राज्य और बड़े पैमाने पर समुदाय के प्रति भी है।पुलिस से जुड़ी ऐसी घटनाएं आमतौर पर निजी व्यक्तियों से जुड़ी घटनाओं की तुलना में हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में विश्वास को कम करती हैं।यहाँ अभियुक्त को उचित सजा देते समय हमें इस पहलू को भी ध्यान में रखना चाहिए।

34. इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, भा.द.वि. की धारा 330 के तहत विचारण न्यायालय द्वारा लगाए गए तीन साल के कारावास की सजा पूरी तरह से अपर्याप्त और असमानुपाती होगी।हम विचारण न्यायालय द्वारा लगाए गए जुर्माने को बरकरार रखते हुए भा.द.वि. . की धारा 330 यानी सात साल के कठोर कारावास के तहत सजा की अवधि को अधिकतम अधिरोपणीय अवधि तक बढ़ाना उचित समझते हैं।तदनुसार, हम इस सीमित सीमा तक दण्डादेश को संशोधित करते हैं।

35. उपर्युक्त चर्चा के आलोक में, हम आंशिक रूप से 2009 की आपराधिक अपील संख्या 182–187 को पूर्व–वर्णित शर्तों में स्वीकार करते हैं।2008 की आपराधिक अपील सं. 385–386, 2008 की आपराधिक अपील सं. 387–388, 2008 की आपराधिक अपील सं. 299 खारिज कर दी गई है।

36. अपीलार्थी–अभियुक्तों को बाकी सजा पूरी करने के लिए तुरंत अधिकारियों के समक्ष आत्मसमर्पण करने का निर्देश दिया जाता है।

लक्ष्मन लाल सर्मा

अपीलों का निराकरण किया गया।

[i] R v. Blaue,[1975] 3 ALL ER 446 (CA)

[ii] Y. Dinstein, "The Defence of Obedience to Superior Orders in International Law", Leyden, 1965.

[iii] Criminal Appeal No. 959 of 2018